# ज़िन्दगी का सिस्टम

**लेखक** : आयतुल्लाहिल उज़मा सय्यदुल उलमा मौलाना सै0 अली नक़ी नक़वी
क़िस्त : 16 **सम्पादन** : नूरे हिदायत फ़ाउण्डेशन

याद रखिये कि इससे भी सिर्फ़ नमाज़ की ज़ाहिरी हालत पूरी होती है मगर नमाज़ की रूह इसके अलावा है। अगर कोई बिल्कुल इसी तरह से पूरे तौर पर नमाज़ पड़े मगर लिल्लाहियत (अल्लाह के लिए होने) का जज़्बा न हो और खुदा की इताअत (भक्ति) का ख़्याल न पाया जाता हो बल्कि लोगों को दिखाने के लिए पढ़ रहा हो तो वह नमाज़ तनिक भी क़ीमत नहीं रखती और अल्लाह की बारगाह में कुबूल होने के क़ाबिल नहीं है। नमाज़ में रूह, इबादत की अहमियत के एहसास से पैदा होती है और परमेश्वर अल्लाह की बारगाह की बड़ाई–ऊंचाई (महत्ता) के ख़्याल और दिल की लगन से जिस का नतीजा सच्चा खुज़ू (अपने को घटिया समझना) और जिसका ताल्लुक़ दिल से है। मासूम इमामों (अ) ने इस एहसास को भी जगाना चाहा, कभी ये इरशाद फरमाया ''जब नमाज़ के लिए खड़े हो तो यक़ीन रखो कि तुम खुदा के सामने हो, तुम उसे नहीं देखते हो तो यक़ीन जानों कि वह तुम्हे देखता है''।

अगर अ़मल के वक़्त ये एहसास बाक़ी रहे कि वह खुदा के सामने है और खुदा उसे देख रहा है तो क्या उसके दिल में इधर–उधर के ख़्याल पैदा हो सकते हैं और नज़र इधर उधर मुड़ सकती है। जितने गुनाह इन्सान करता है सिर्फ़ इसलिए कि वह इस बात का ख़्याल बाक़ी नहीं रखता कि खुदा सामने है और ये कि खुदा उसे देख रहा है, अगर ये एहसास बाक़ी रहे तो ये नहीं हो सकता कि इनसान गुनाह करे या इबादत/भक्ति को बेदिली के साथ पूरा करे। एक जगह इरर्शाद हुआ है –'' जब नमाज़ पढ़ो तो ये ख़्याल करो कि ये आख़िरी नमाज़ है, हो सकता है इसके बाद पढ़ना नसीब न हो। ''हक़ीक़त ये है कि इन्सान की ज़िन्दगी का भरोसा नहीं। किसे मालूम कि जो सांस आ रही है वह आख़िरी नहीं है तो फिर दूसरी नमाज़ तक ज़िन्दा रहने का इत्मेनान किसे हो सकता है अगर ये ख़्याल नमाज़ के वक़्त पैदा हो जाय तो बेशक नमाज़ उस तरह होगी जिस तरह इन्सान को पढ़ना चाहिए।

**मासूम इमामों (अ0) और अहलेबैत(अ0) के शियों की नमाज़**

जिस तरह ज़बान से इमामों (अ) ने लोगों को नमाज़ में खुशू व खुज़ू पैदा करने को कहा उसी तरह अपने कर्म से ऐसे ही नमूने सामने किये और होना भी यही चाहिये था क्यों कि उनका मक़सद दुनिया को इल्म ज्ञान और कर्म में पूरे दर्जे पर पहुँचाना था इसलिए खुद उन्हें ज़िन्दगी के हर मैदान में आखिरी हद पर होना ज़रूरी था। इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ0) की ये हालत होती थी कि '' जब आप (अ) नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो आप (अ) के चेहरे का रंग बदल जाता था और जब सजदा करते थे तो तब तक सर नहीं उठाते थे जब तक पसीने में भीग नहीं जाते थे, ''चूँकि नमाज़ की हालत में सबसे ऊंचा दर्जा सजदे का है इसलिए ये मासूम इमाम (अ) सबसे ज़्यादा देर तक सजदे में रहते थे।

एक रवायत में है '' इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ) जब नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो ये मालूम होता था कि एक पेड़ का तना है जो हवा चलने के बिना ज़रा भी हिलता नहीं''।

अबान बिन तग़लिब कहते हैं–'' मैने इमाम ज़ैनुल आ़बिदीन (अ) को देखा कि जब नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो आप के असली रंग पर दूसरा रंग छा जाता था।''

इमाम जाफ़र सादिक़ (अ) ने उसकी वजह बताते हुए फ़रमाया–

"इमाम ज़ैनुल आबिदीन (अ) जानते थे कि वह किसके सामने खड़े हो रहे हैं।"

अबू हम्ज़ा सुमाली का बयान है–

"मैने इमाम ज़ैनुल आबदीन (अ) को देखा कि आप नमाज़ पढ़ रहे हैं और इस हालत में आपकी चादर आपके कन्धे से गिर गई, आपने उसको सही नहीं किया यहाँ तक कि अपनी नमाज़ को ख़त्म किया। मैने इसके बारे में पूछा तो फ़रमाया कि तुम जानते हो मैं किसके सामने था!!"

इमामे हसन (अ0) के बारे में भी आया है कि जब आप वुज़ू कर चुके होते थे तो आपके चेहरे का रंग बदल जाता था, इसकी वजह पूछी गयी तो फ़रमाया–

"जो आदमी अर्श के मालिक के दरबार में हाज़िर हो उसका रंग बदल ही जाना चाहिए," और जब आप नमाज़ के लिए खड़े होते थे तो हाथों–पैरों में कप्कपाहट होती थी। मासूम इमाम (अ0) के कहने और करके बताने ही का असर था कि उस ज़माने में नमाज़ में खुज़ू व खुशू पाया जाना अहलेबैत के शियों की ख़ास बात समझी जाती थी। इसका एक ऐतिहासिक (Historical) सबूत जो मेरे सामने है, जो अहलेबैत (अ0) के एक दुश्मन की ज़बान से है और जिसको एक पुराने (इतिहासिकार) (Historian) अबू हनीफ़ा दीनावरी ने अपनी किताब 'अख़बारतुल अहवाल में बयान किया है। इस मौक़े पर जब हज़रत मुस्लिम–बिन–अक़ील इमाम हुसैन (अ0) की तरफ़ से नुमाइन्दे / प्रतिनिधि (Representative) बनकर कूफ़ा आए हैं और आपने छुपे छुपे कूफ़ा वालों से इमाम हुसैन (अ0) के साथ वफ़ादारी का वादा लेना शुरू किया और इब्ने ज़्याद गवर्नर होकर कूफ़ा आया तो उसने हज़रत मुस्लिम (अ0) की जासूसी शुरू की और अपने एक गुलाम 'मो'कुल' को जो शाम का रहने वाला था उसे इस काम पर लगाया। उसे एक थैली में तीन दिरहम दिए और कहा मुस्लिम का पता लगाओ। मो'कुल गया और समझ मे न आता था कि किस तरह जनाबे मुस्लिम का पता लगाए। इसी सोंच में वह सबसे बड़ी मस्जिद में आया और उसने देखा कि मस्जिद के एक खम्बे के पास एक बुज़ुर्ग नमाज़ में मशगूल हैं और बहुत सी नमाज़े उन्होंने पढ़ी हैं। इतिहास के शब्द हैं, "उसने अपने दिल में कहा कि यह शिया लोग नमाज़ बहुत पढ़ते हैं और मेरा ख़्याल है कि यह आदमी उन्हीं में से है, इसी ख़याल पर वह आगे बढ़ा और उस ने सुराग़ पता लगाने में कामयाबी पा ली, वह बुज़ुर्ग मुस्लिम बिन औसजा थे, जो हज़रत मुस्लिम बिन अक़ील की तरफ़ से लोगों से बैअ़त लेते थे।

आपने देखा, कि ज़्यादा नमाज़ पढ़ना और इबादत (भक्ति) उस ज़माने में शीया फ़िरक़े (सम्प्रदाय) की पहचान थी। अफ़सोस है कि आज हमारे फ़िरक़े के बहुत से लोग नमाज़ की तरफ़ ज़्यादा तवज्जो नहीं देते हैं और उसे अहमियत की निगाह से नहीं देखते।

**तक़बीरात–ए–इस्तेफ़्ताह (शुरू में अल्लाहु अक्बर कहना)**

नमाज़ से पहले सात तक़बीरें (सात बार अल्लाहु अक्बर कहना) कहने का हुक्म दिया गया है जिनमें से एक तकबीरतुल इहराम (एक बार अल्लाहु अक्बर कहना जो वाजिब है) होगी और छः तक़बीरें मुस्तहब (सुन्नत), यह इसी लिए है कि किसी एक तकबीर में शायद दिल पर असर पड़ जाए और नमाज़ में दिल लग जाए। इसी लिए बीच में ऐसी दुआएँ रखी गई हैं जिनका इन्सान के दिल पर असर हो सकता है। नमाज़ शुरू करना चाहे तो हाथों को ऊंचा करे और तीन मरतबा तकबीर कहे, फिर यह दुआ पढ़े–" अल्ला–हुम्–म अन्तल् मलिकुल् हक़्क़ुल् मुबीनु ला इला–ह इल्लल्ला–ह इल्ला अन्–त सुब्हा–न–क इन्नी ज़लम्तु नफ्सी फ़ग़्फ़िर्ली ज़ंबी इन्–नहु ला यग़्फ़िरूज़्–जुनू–ब इल्ला अन्–त।

ए अल्लाह!! तू खुला हुआ सच्चा बादशाह (साफ़ सत्य–ईश्वर) है। तेरे अलावा कोईभगवान नहीं है। (तेरी मेहिमा) तू पाक पवित्र है। मैंने अपनी जान पर अन्याय किया है तो फिर तू मेरे गुनाह पाप को ढांप ले (क्षमा कर दे) क्योंकि पापों को क्षमा करने वाला तेरे अलावा कोई नहीं है।

इन थोड़े से (शब्दो) में खुदा की हम्द / सन्स्तुति और तौहीद एकेश्वरवाद है और उसके साथ तसबीह (खुदा पवित्र पाक होने का बयान) फिर अपने गुनाहों का मान लेना (Admit) करना और तौबा– अस्तग़फ़ार है। वह बारगाह के दरवाज़े पर आता है और कहता है "खुदा वन्दा तू है बादशाह (ईश्वर प्रभु)।" इन्सान की मानसिकता (Mentality) यह है कि वह हुकूमत

की तरफ़ झुकता है मगर हर हुकूमत से बड़ी खुदा की हुकूमत है, इसलिए उसकी हुकूमत को याद करके इन्सान महानता का एहसास पैदा करता है फिर ख़्याल करता है कि दुनिया में बादशाह तो बहुत हैं फिर खुदा की ख़ासियत क्या हुई? तो कहता है *"अल्हक़"* यानि दूसरे अगर बादशाह हैं तो बनाए हुए हैं , हक़ीक़ी बादशाह तो सिर्फ़ तू ही है। *"अल्मुबीन"* यानि तेरी हुकूमत के लिए किसी सुबूत के खोजने की ज़रूरत नहीं। उसकी निशानियां खुली और ज़ाहिर हैं। इस राजसत्ता और हुकूमत के साथ यह एहसास होता है कि फिर बहुत ही सम्मान और भक्ति (इबादत) का पात्र भी वही है, इस लिए कहता है *"लाइला–ह इल्ला अन्–त"*, कोई सच्चा भगवान नहीं, सिवाए तेरे। इस तरह खुदा की हम्द (संसुति) के बाद तौहीद (एकेश्वरवाद) की बात पूरी हुई है। *"सुबहा–न–क "*यानि" पाक है तेरी ज़ात" इसमें उसकी ज़ात को सारी कमियों से दूर कहा गया और उसकी ज़ात के पाक पवित्र होने का एलान किया। इस तरह अपने पैदा करने वाले के पूरी तरह की परिपूर्णता होने का मानना था कि अपनी कमियों और बुराईयों पर नज़र गई और कमियों का एहसास हुआ तो फ़ौरन कह उठा *"इन्नी ज़–लम्–तु नफ़्सी"* ऐ खुदा! मैनें अपने आप पर बड़ा अन्याय किया यानि गुनाहों को करता रहा, क्यों कि कुरान मजीद में गुनाह करने वालों को ज़ालिम (अन्यायी) की उपाधि दी गयी है। कहा गया है– "जो लोग खुदा की बनायी हुई हदों से आगे बढ़ते हैं वही ज़ालिम हैं।" गुनाह के एहसास के बाद इन्सान इधर–उधर नज़र डालता है तो कोई सहारा ख़ुदा के अलावा नज़र नहीं आता। यानि ऐ खुदा अब मेरे गुनाह को माफ़ कर दे निश्चय तेरे अलावा कोई नहीं है जो गुनाहों को माफ़ कर सके।

उसके बाद फिर दो बार 'अल्लाहु अकबर' कहे और फिर कहे:

लब्बै–क व सादै–क वल् ख़ै–र फ़ी यदै–क वश्शर्रू लै–स इलै–क वल् मह्दीयु मन् हदै–त ला मल्जा मिन्–क इल्ला इलै–क सुब्हा–न–क व हनानै–क तबारक–त व त–आलै–त सुब्हा–न–क रब्बल् बैत्।

यानि" हाज़िर हूँ उपस्थित हूँ" ये *लब्बैक* की आवाज़ किसी छिपे हुए बुलावे का पता दे रही है, मालूम होता है कि जब तक पहली दुआ में गुनाहों से तौबा किया है उस वक़्त तो बन्दा इस क़ाबिल ही नहीं था कि उसको खुदा के दरबार में हाज़िर होने की इजाज़त मिले मगर जब उसने गुनाहों का इक़रार (कुबूल) कर लिया और तौबा (पछतावा) कर ली; याद रखिए कि खुदा का दरबार दुनिया के बदशाहों और हाकिमों का दरबार नहीं जहाँ दरख़ासत को मनज़ूर होने के लिए लम्बा वक़्त लगता है बल्कि यह वह दरबार है जहाँ सच्चे दिल से तौबा का ख़्याल आने के साथ ही गुनाह की माफ़ी का पत्र मिल जाता है। पहली तकबीरों के बाद भी जब खुदा की हम्द/तारीफ़ के बाद यह कहा कि मैं मुजरिम हूँ, पालने वाले मेरे गुनाह को माफ़ कर दे, तेरे अलावा कौन है जो मुझे माफ़ी दे सके। अगर यह बोल सही एहसास व एक़रार के साथ कहे गए हों तो यही गुनाह की माफ़ी के लिए काफ़ी हैं। अब जैसे ये बन्दा इस क़ाबिल हुआ कि खुदा के यहां में इसको हाज़िर होने के लिए आवाज़ दी जाए। ग़ैब की आवाज़ इसके दिल के कानों में आती है और यह कहता है – *"लब्बैक"* यानि "हाज़िर हूँ और मेरी खुशक़िस्मती तेरी तवज्जो के साथ जुड़ी है। और भलाई तेरे क़ब्ज़े में है और बुराई का तेरी तरफ़ गुज़र नहीं और सही रास्ते पर वही है जिसको तू रास्ता दिखाए।"

मतलब यह मालूम होता है कि आने वाली ज़िन्दगी (भविष्य) में मेरा सही रास्ते पर टिका रहना तेरी ही हिदायत (मार्ग दर्शन) पर निर्भर है। "तुझसे भागने की कोई जगह नहीं अलावा तेरे" यानि इन्सान तुझसे भाग कर जाए तो कहीं उसका ठिकाना नहीं, आख़िरकार उसे तेरी ही तरफ़ आना पड़ेगा। "पाक है तेरी ज़ात और मेहरबान है तू, बरकत वाला है और तेरी ज़ात बुलन्द है, तू कमियों और बुराईयों से पाक और परे है, ऐ खानए काबा के पालने वाले।"

अब जैसे बन्दा खुदा के दरबार में हाज़िर हो गया और उसके चेहरे के सामने पालनहार का तेज़ और ऐश्वर्य आ गया वह दो बार और 'अल्लाहु अक्बर' कहता है और निवेदन करता है" वज्जहतु वज्हिय लिल्लज़ी फ़–त–रस्समावाति वल् अर्–ज़ आलिमुल् ग़ैबि वश्शहादति हनीफ़न् तुस्लिमन् व मा अना मिनल् मुश्रिकीन इन्–न सलाती व नुसुकी व मह्या–य व

ममाती लिल्लाहि रब्बिल् आ–लमी–न ला शरी–क लहु व बिज़ालि–क उमिर्तु व अना मिनल् मुस्लिमीन'' मैने मुंह उसकी ओर किया जिसने आसमानों और ज़मीन को पैदा किया और वह सामने की ओर गैब (अदृश्य) की बातों को जानता है। मैं उसके लिए जी लगा के सर झुकाता हूँ और किसी को उसके साथ साझी नहीं करता, मेरी नमाज़ और मेरी भक्ति और मेरा जीना मरना सब अल्लाह के लिए है जो सारे संसारों का पालनहार है, कोई उसका साझी नहीं है और इसी का मुझे हुक्म हुआ है और उसके आगे समर्पण करने वाला मैं हूँ।''

ये हैं वह बोल जिन से नमाज़ की शुरूआत होती है। सच बतायें कि अगर इन बातों का इन्सान के दिल पर असर पड़ जाय तो क्या हो भी सकता है कि नमाज़ में आदमी का जी न लगे या वह इधर–उधर के ख़्यालों से अपने मन को बेकल रखे। आदमी को छूट है कि इन्हीं तकबीरों में से जिसको चाहे तकबीरतुल एहराम (नियत के बाद एक बार अल्लाहु अक्बर कहना, जो वाजिब अनिवार्य है) के इरादे से कहे, इस दुआए तौबा *(वज्जहतु वज्हिय)* के बाद *'अऊज़ू बिल्ला–हिस् समी'उल अलीमि मिनश्शैतानिर्रजीम'* के साथ सूरह हम्द' शुरू करें जो नमाज़ में फर्ज़ और ज़रूरी (वाजिब) है इसके अलावा तकबीरतुल एहराम छोड़ के सभी तकबीरें (अल्लाहु अक्बर) और दुआएँ मुस्तहब हैं, उनका पढ़ना वाजिब नहीं है।

**सूरा हम्द**

नमाज़ में सूर–ए–'हम्द' को बड़ी अहमियत है। कहा गया है ''नमाज़ बिना *फ़ातेहतिल किताब* यानी सूरे हम्द के नहीं होती।'' यहाँ तक कि नाफ़िला (सुन्नत) नमाज़ में दूसरा सूरह छोड़ देना जायज़ है मगर सूरा हम्द उन नमाज़ों में भी ज़रूरी है। और वाजिबी नमाज़ में दूसरे सूरों में कोई सूरे तय (निश्चित) नहीं है मगर सूरे हम्द निश्चित तौर पर ज़रूरी है। यानी कोई दुसरा सूरा इसका बदल नहीं बन सकता। इसी वजह से सूरा हम्द के नामों में कुछ उलेमा ने सूरा हम्द का नाम ''सूरतुस्सलात'' भी दर्ज किया है। सूरा हम्द के बारे में अमीरुल मोमिनीन अ0 का यह कथन मशहूर है कि:–

''जो कुछ पूरे कूर्आन में है वह सूरा हम्द में है।'' इसको असल मतल व और व्याख्या को तो पूरे तौर पर हम नहीं समझ सकते मगर हम अपनी अक़्ल के हिसाब से भी ग़ौर करते हैं तो मालूम होता है कि पूरे क़ुर्आन का असली मक़सद दो बातें हैं: 'ईमान' (विश्वास) और 'अ़मल (कर्म)'। ईमान' के दो हिस्से है, मुबदा (आदि) और मआद (अन्त), और कर्म के दो हिस्से हैं: अच्छी बातों को करना और बुरी बातों से दूर रहना।

सूरा हम्द में क्रम ये सारी बातें मिलती हैं। *''अल्हम्दुलिल्लाहि रब्बिल आ–लमीन, अर्रहमानिर्रहीम''* पहला मुबदा यानी खुदा पर ईमान। *''मालिकि यौमिद्दीन* ''आख़ेरत के दिन (प्रलय) का मालिक, *''सिरातल्–लज़ी–न अन्' अम–त 'अलैहिम* 'ये है अच्छे कर्म को करना और *''ग़ैरिल मग़ज़ूबि अलैहिम् वलज़्ज़ाल्लीन''*, ये है बुरे कामों से दूर रहना।

मालूम होता है कि सूरे हम्द एक आलेख है और पूरा कूर्आन उसकी व्याख्या। वह अस्ल है और पूरा कूर्आन उसका विस्तार। सूरा हम्द में भी सबसे अहम आयत *बिस्मिल्ला–हिर्रहमा–निर्रहीम''* है। इसके बारे में अमीरुलमोमिनीन अ0 ने फ़रमाया है कि जो कुछ पूरे सूरे हम्द में है वह सिर्फ़ *''बिस्मिल्लाह''* में है। आप इन चारों हिस्सों पर ग़ौर किजीए जिनका पता मैने सूरे हम्द से दिया है तो मालूम होगा कि उन सब का निचोड़ ख़ुदा और बन्दे का आपसी रिश्ता है। पालने वाले को किसी की ज़रूरत नहीं पर सबको उसकी ज़रूरत है। इस रिश्ते को *''बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम''* बताता है जिसमें बन्दा अपने पालने वाले के प्रदान और दया का पता देता हो, उससे मदद चाहता है। शायद इसी अहमियत की बात है कि सूरे हम्द में इस आयत के लिये ख़ास तौर से ऊँची आवाज़ से पढ़ने का हुक्म है, चाहे जुहर या 'अस्र की नमाज़ हो जिसमें सूरे को चुपके पढ़ना ज़रूरी है।

अब ज़रा सूर–ए–हम्द के मानें को देखिये। विस्तार का यह मौक़ा नहीं है इसलिये हमारी किताब ''तफ़सीर'' को देखें जिसका एक पूरी भाग (Volume) सूरा हम्द की व्याख्या में लिखा गया है। इन्सान मुसल्ले (नमाज़ की जगह, चटाई आदि) पर आता है और नमाज़ की नीयत करता है जिसमें कार्य को अपनी ओर से करने की बात करके मक़सद को ज़ाहिर करता है। इसमें किसी हद तक अहम् या हमहम आ सकता है, इसलिये बुलन्द आवाज़ से कहता है *''बिस्मिल्ला–हिर्रहमा–निर्रहीम''* ''मदद से अल्लाह की

जो बड़ा दया वाला दयानिधान और बड़ा रहम करने वाला है।'' इसका मतलब ये है कि जो कुछ मैं करना चाहता हूँ उसके लिये इरादा तो मेरा है मगर उसका पूरा होना अल्लाह की मदद पर निर्भर है। *''अल्हम्दु लिल्लाह रब्बिल् आ–लमीन''*, सारी तारीफ़ें सिर्फ़ अल्लाह के लिए जो ''सभी संसारों का पालने वाला है'', इसे एक प्रशंसापत्र (तारीफ़ का पत्र) समझिए जो बन्दा (दास) अपने मालिक के दरबार में सामने के बाद पेश कर रहा है *''अर्रहमा–निर्रहीम''* जो बड़ी दया वाला है, और बहुत रहम करने वाला है। इसका बयान बिस्मिल्लाह में भी हो चुका था। मगर वहाँ मदद माँगने के बारे में था और यहाँ सस्तुति के सबूत में है और जगह बदली हुई है और इसका फ़ायदा अलग–अलग है इसलिए इसे बार बार कहना नहीं कहा जा सकता। *''मालिकि यौमिद्दीन''* वह जो रोज़े बदले के दिन/प्रलय/क़यामत का मालिक है'', इसके पहले उसके ख़ुदा होने की बात थी जिसकी खुली निशानियाँ दुनिया के सामने हैं। अब नज़र आगे पढ़ी और मानलिया कि सिर्फ़ दुनिया में ही नहीं बल्कि आख़ेरत पर भी क़ब्ज़ा उसी का है, इसलिए बंदे की हाजतें (आवश्यकताएँ दुआएँ) वहाँ के लिए भी उससे जुड़ी हैं। 'ख़ुदाई' आदमी के होने से पहले है। और पालने वाले का रिश्ता आदमी के होने याने जीते जी तक ज़ाहिर है क्योंकि वही उसके बाक़ी रहने और उसे उसके परवान चढ़ाने का कारण है और *''यौमिद्दीन''* यानि क़यामत के दिन का राज भविष्य याने आने वाले काल से जुड़ा है। इस तरह इन थोड़े से बोल में आदमी की निगाह भूत, वर्तमान और भविष्य काल सबके ऊपर पड़ गयी और सिरजनहार की महानता का एक नक़्शा उनके सामने खिंच गया, जिसकी वजह से इसके पहले अगर वह उसकी निगाह से ओझल था और इसलिए वह आड़ से कह रहा था तो अब वह परदा हट गया और उसका तेज विल्कुल आंखों के सामने आ गया इसलिए अब बात 'वह' से 'तू' में होने लगी, *''ई–या–का–नअ़–बुदु व ईया–क नस्तईन''* ''हम तेरी ही इबादत/भक्ति करते हैं और तुझही से मदद चाहते हैं।'' दूसरी जगह होती तो 'हम' कहने में बड़ाई पैदा होती थी मगर अपने की बड़े की सेवा में पेश करने के मौक़े पर 'मैं' का कहना अहम् को दिखाता है। कहा जा रहा है कि 'हम' तेरी ही भक्ति करते है'' यानी ये खुद अपने आप को अकेला और उसकी सेवाओं को कहने के क़ाबिल ही नहीं समझता बल्कि अपने को ख़ुदा के सारे बन्दों में मिला कर अल्लाह की सेवा में निवेदन करता है फिर भक्ति के लगाव को अपनी ओर कर देने से अपने आप पर भरोसे को दिखाना था इसलिये कह दिया *''व ई–या–क नस्तईन''* यानी हम क्या, जो तेरी भक्ति कर सकें, हम अपनी सकत भर भक्ति करते हैं और फिर तुझही से मदद की उम्मीद रखते हैं।

ख़ुदा की मदद इंसान के कर्म पर निर्भर है–''वल् लज़ी–न जा–हदू फ़ीना ल–नह्दियन्–नहुम सुबु–लना'' जो हमारे रास्ते में जतन करते हैं हम उन्हें अन्त तक पहुँचा भी देते हैं।'' इसलिये पहले *''ई–या–क ना'बुदु''* कहा गया है फिर *''व ईया–क–नस्तईन''* क्यों कि अगर यह भक्ति में आगे न बढ़े तो इसे मदद मांगने का कोई हक़ नहीं है। फिर ये ज़ाहिर करने के लिए कि ये मदद् दुनिया की किसी ज़रूरत के लिए नहीं है, तो उसकी व्याख्या कर दी *''इह्दि नस्–सिरातल–मुस्–तक़ीम''* वह कौन सा सीधा रास्ता? *''सिरातल लज़ी–न अन अ़म्त अलैहिम''* उन लोगों का रास्ता जिनको तूने अपनी नेमत (अच्छाइयों) से मालामाल किया है। वह लोग कौन है? इसका साफ़ बयान कुरान मजीद में एक और जगह इस तरह कर दिया गया है कि ''फ़–ऊला–इ–क म–अ़ल्–ल–ज़ीन, अन्–अ़–मल्लाहु अ़लैहिम् मिनन्नबी ईन वस् सिद्दीक़ी–न वश्शु–ह–दाइ वस् सालिही न'' मालूम हाता है कि ये वह लोग हैं जिन पर ख़ुदा की तरफ़ से इनाम हुआ है। मतलब ये हुआ कि मुझको नबियों, सच्चों शहीदों और नेक लोगों के रास्ते पर ले चल यानी उनके जैसे काम करने की तौफ़ीक़ (वरदान) दे। उलट से उलट की तरफ़ निगाह का मुड़ना अवश्य ही होता है। उन नेक लोगों का बयान करने के साथ ही बुरे काम करने वाले लोगों की तरफ़ निगाह गयी और उनसे घिन पैदा हुई तो बन्दे ने उनसे अलग थलग रहना चाहा और पनाह मॉगी कि *''ग़ैरिल्–मग़ज़ूबि अ़लैहिम व लज़्ज़ाल्लीन''* उन लोगों के रास्ते की तरफ़ नहीं जिन पर तेरा ग़ज़ब (प्रकोप) पड़ा है और जो गुमराह (पथ भ्रष्ट) हैं।

इन्सान को चाहिए कि सूरे के उन बोलों को पढ़ने की तरह ज़बान पर लाता रहे और दिल में उसके

यही अहसास पैदा होते रहें, इससे अच्छे कामों की तरफ़ मिलान और बुरे कामों से नफ़रत का जज़्बा पैदा होगा और इबादत भक्ति का मक़सद पूरा होगा।

**दूसरा सूरह**

सूरे हम्द के बाद कोई दूसरा सूरह पढ़ना चाहिए। इसके लिए किसी ख़ास सूरे का बन्धन नहीं है फ़िर भी सूरह हम्द के बाद सभी सूरों में अफ़ज़ल सूरह *''कुलहुवल्लाह''* है लेकिन पहली रकअत में *''इन्नाअन्ज़ल्ना''* पढ़ने को भी कहा गया है इसलिए हम सूरह *''इन्नाअन्ज़ल्ना''* और फिर *''कुल्हुवल्लाह''* के मानी लिखते हैं। नमाज़ में इनका पढ़ना ख़ास तौर से आया है।

**सूरह इन्ना अन्ज़ल्ना**

ये सूरह ख़ासतौर से खुदा के रसूल हज़रत मुहम्मद (स0) के साथ लगाव रखता है क्यों कि ये आप (स0) की ढारस के लिए उतरा है। इन्–न अन्ज़ल्नाहु फ़ी लै–ल–तिल् क़द्र

हमने इस कुरान को शबे–क़द्र (महिमा की रात) में नाज़िल किया। शबे–क़द्र के मानी खुदा के द्वारा तय करने (भाग्य) की रात । इमामों (अ.) की हदीसों में आया है कि इस रात को सारे साल के होने वाले कामों का भाग्य तै होता है। जो लोग यह मानते हैं कि सारे का सारे भाग्य अज़ल शुरू में निश्चित हो चुका है और अब किसी बदलाव की जगह नहीं है, उनके लिए शबे–क़द्र का कोई मतलब पैदा नहीं होता, मगर हम जो खुदा के भाग्य को कारण और हालात से जुड़ा हुआ समझते हैं और यक़ीन रखते हैं कि खुदा अब भी दुनिया के निज़ाम (System) से अलग और निलम्बित नहीं है बल्कि''''यम्हुल्लाहु मा यशा–उ वयुस्बितु व इन्दुहु उम्मुल किताब (अल्लाह जो चाहता है मिटा देता है और ठहरा देता है और....)'' यही वह ख़्याल है जिसको ''बदा'' का विश्वास कहते हैं। हमारे नज़दीक *''लैलतुल क़द्र* (भाग्य की रात)*''* का ये मतलब समझा जाता है कि उन निश्चित भाग्यों के मातहत जो आम कारण के आधार पर हमेशा से निश्चित हैं, वह ख़ास वक़्ती हालत के लेहाज़ से हर साल के लिए जो फैसला होना है वह शबे क़द्र में होता है। दूसरी बात इस रात में कुर्आन के नाज़िल होने (उतरने) का मतलब चर्चा का विषय है। यह जबकि वह तेइस 23 बरस की लम्बी अवधि में थोड़ा–थोड़ा करके यानि आयत–आयत या सूरह–सूरह करके उतरा है।

इसके बारे में मैं अपनी उर्दू किताब 'मुकद्दमए तफ़सीर' (कुरान व्याख्या की प्रस्तावना) में ये विचार सामने लाया हूँ, जैसा कि हदीसों से पता चलता है कि कुर्आन पहले बैतुलमामूर ('वसाया/बनाया हुआ निवास/काबे के ठीक ऊपर फ़रिश्तों द्वारा बनाया हुआ घर') में नाज़िल हुआ था फिर वहाँ से थोड़ा–थोड़ा करके रसूल (स0) पर उतरा है। यह तारीख (शबे क़द्र) उसी पहली बार नाज़िल होने के बारे में है जो मलायआला (उच्चतम स्थान) में हुआ था।*''व मा अद्रा–क मा लै–लतुल् क़द्र''* और तुम्हें क्या पता कि शबे क़द्र क्या चीज़ है? यह सवाल करना महत्ता को ज़ाहिर करने का एक अंदाज होता है जिसका मतलब यह होता है कि उसकी महत्ता/श्रेष्टता तुम्हारी समझ से बाहर है। *'' लै–लतुल् क़द्रि ख़ैरूम् मिन् अल्फ़ि शह्र ''*शबे क़द्र हज़ार महीनों से अच्छी है। इसके नाज़िल होने (उतरने) के बारे में दो रवायते हैं, एक यह कि रसूले खुदा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (स0) को मालूम हुआ कि बनी इसराईल में से एक आदमी हज़ार महीने तक तलवार कन्धे पर रखे जेहाद (संग्राम) में लगा रहा। आप (स0) को अफ़सोस हुआ कि मेरी उम्मत की उम्र इतनी कम है कि वह इस नेमत/अच्छाई का फ़ायदा नहीं उठा सकती। तो यह आयत उतरी जिसका मतलब यह है कि तुम्हारी उम्मत के लिए उस एक रात के काम उन सारे हज़ार महीनों से अच्छे है जिनमें उस इसराईली ने खुदा के रास्ते में जेहाद किया था।

दूसरी रवायत यह है कि जनाब रसूल (स0) ने ख़्वाब में देखा कि बनी उमइया आप (स0) के मिंबर पर बंदरों की तरह उछल–कूद रहे हैं। आप (स0) को इस पर बड़ा दुख हुआ। इस पर यह सूरह नाज़िल हुआ। हज़ार महीने का मतलब बनी उमैया का पूरा राज्यकाल है। (हज़ार महीने राज रहा) मतलब यह है कि ऐ रसूल (स0) इसका दुख न करो कि बनी उमैया तुम्हारी शरीयत को तबाह व बरबाद कर देगें, क्योंकि जो तुम्हारी शिक्षा पर बाक़ी रहेगें और निरे खरे मोमिन होंगे उनके लिए एक रात शबे क़द्र उन सब हजार महीनो से अच्छी है जिनमें बनी उमइया राज करेंगे। इसी नाज़िल होने की वजह से समझ में आता है कि शबे क़द्र को इमाम हुसैन (अ0) की ज़ियारत के लिए

क्यों कहा गया है? यह रात बनी उमइया के ज़ुल्म के मुक़ाबले में रसूल (स0) की ढारस की वजह बनी इसलिए इस रात में ईमान वालों (आस्तिकों) को वह सबसे बड़ा ज़ुल्म अत्याचार याद दिलाया जाता है जिसके बनी उमइया दोषी हैं।

तन्ज़्–ज़लुल् मलाइ–कतु वर्रूहु फ़ीहाबि इज़्नि रब्बिहिम

"(इस रात में) उतरते है फ़रिश्ते और रूह, अपने ख़ुदा के हुक्म से"

क़ुर्आन ने इतना ही बताया है कि इस रात को बराबर फ़रिश्ते आसमान से उतरते हैं, मगर कहाँ आते हैं इसका कोई बयान नहीं। हदीसों में आया है कि ये ह0 इमामे ज़माना (अ0) के पास आते हैं, *"मिन कुल्लि अम्रिन सलाम"* यह रात हर बात से सलामती (ठीक–ठाक होने) का ज़रिया है, *"हि–य हत्ता मत्लइल फ़ज्र"* वह रात (अपनी सारी बरकतों समेत, सादिक (सच्ची) सुबह तड़के (सुबह की नमाज़ के पहले वक़्त तक) चूँकि आम तौर से सूरज के निकलने/सूर्योदय तक रात की हद समझी जाती है मगर शरीयत की ज़बान में रात की हद सुबहे सादिक़ (अस्ल सवेरा) से ख़त्म हो जाती है। इसलिए शबे क़द्र की भी आख़िरी हद सुबह सादिक़ ही है सूरज निकलने तक नहीं।

## सूरह क़ुलहुवल्लाह

सूरह हम्द के बाद सारे सूरों में ऊँचा दरजा सूरह तौहीद (*कुल हु–वल्लाह*) का है। इसको एक तिहाई क़ुर्आन कहा गया है। इसकी यह वजह हो सकती है कि इस्लाम के उसूल तीन हैं–

1.तौहीद (एकेश्वरवाद) 2.नबूवत 3.क़यामत

हम जो उसूल–ए–दीन (धर्म की जड़ों) में 'अदल' (ख़ुदा का न्याय) और 'इमामत' को भी शामिल हैं वह इस वजह से कि अद्ल, तौहीद का एक हिस्सा है और इमामत नबूवत की एक ख़ास शाखा है। हम इसका अलग से इस लिए नाम दे देते हैं कि लोगों ने इसका इंकार ज़रूरी समझा है मगर असल में जब तक अद्ल को माना न जाए तौहीद पूरी नहीं होती और 'रिसालत' की सच्चाई पूरी नहीं जब तक इमामत मानी न हो।

देखिए तो तौहीद के यह माने नहीं है कि सिर्फ़ ख़ुदा के होने को मान लें क्योंकि यह तो किसी न किसी हद तक दुनिया के सभी मज़हब का मानना है। इसाई तीन (Trinity) में का एक कहके भी उसके होने को मानते हैं और मुश्रिक लोग मूर्ति पूजा के साथ भी उस ख़ुदा (निराकार ईश्वर) का इंकार नहीं करते हैं। मालूम होता है कि तौहीद के अंदर उस का भरपूर 'निज' और महान गुणों का मानना छिपा है। अब अगर कोई एक ऐसे ख़ुदा को मानता है जो उसके नज़दीक अन्याय, अति, बेइन्साफ़ी और बेकार के काम से जुड़ा हो तो यह किसी तरह उस ख़ुदा को मानना नहीं है जो असल में उन सारी बुराइयों से परे और पाक है, ख़ासतौर से जबकि हमारा विश्वास उस ख़ुदा से जुड़ा होता है, जिसकी ओर से गुण इशारा करते हैं और बस, वरना हमारे लिए उसके निश्चित करने का कोई साधन नहीं है।

मालूम होता है कि इन सब बातों में सबसे ऊपर की बात ख़ुदा की पहचान है जिसको 'तौहीद' का नाम दिया जाता है। ये इस्लाम का सबसे पहला मक़सद है, फिर दूसरे दरजे पर रिसालत/नबूवत और तीसरे पर क़यामत है। सूरह *"कुल्हुवल्लाह"* शुरू से आखिर तक उसी पहले मक़सद यानी 'तौहीद' को पूरी तरह पंहुचाता है, इस लेहाज़ से वह क़ुर्आन के सब मक़सदों का एक तिहाई हिस्सा है, और इसीलिए उसे एक–तिहाई क़ुर्आन कहा गया है।

*"कुल हु–वल्लाहु अहद"* ये ख़ुदा की 'तौहीद' की बात है, इस्लाम के पैग़म्बर (स0) की आवाज़ थी– *"कूलू ला इला–ह इल्लल्लाहु तुफ़्लिहू"*–

"कहो कि अल्लाह के अलावा कोई भगवान नहीं तो नजात, मोक्ष/सफलता पाओगे।"

हमारे रसूल (स0) की आवाज़ में एक सामूहिक शान थी। मालूम होता था कि आप (अ0) एक मजमे से बात कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि क़ुर्आन हर–एक का कन्धा हिला कर और झिंझोड़ कर उससे कहता है–*"कुलहु वल्लाहु अहद"* "कहो कि वह अल्लाह है एक अकेला"। इसमें पहले ख़ुदा को शब्द "हु", के इशारे से निश्चित किया गया है। बात ये है कि गुण (Qualities) कभी किसी के निर्धारण करने का फ़ायदा नहीं दे सकते। हर लफ़्ज (शब्द) जिसका कोई मुस्तक़िल (नियमित) माने है वह अपने साथ एक गहराई की बात लिए हुए होता है। माने के साथ माने का बन्धन लगाने से कभी निर्धारण नहीं होता। लेकिन अगर इशारा किसी ख़ास की तरफ़ हो तो बड़े से बड़ा माने भी निश्चित हो जाता है, जैसे– वह चीज़, वह माने, वग़ैरह–वग़ैरह।

यहाँ चीज़, माने के शब्द में बहुत गुंजाइश है, मगर सिर्फ़ ''वह'' ने इसको एक से इतना ख़ास बना दिया कि दूसरे की जगह नहीं। दूसरा ज़रिया किसी चीज़ के (निश्चित) करने का उसका 'नाम' ले लेना है और नाम तो उस ज़ात से ख़ास लगाव रखता है कि जिसका नाम लिया जा रहा है, अब अगर नाम लेकर जिसका नाम हो उसका पता देना हो तो फिर वही ''वह'' का शब्द याद रह जाता है जो उसे तय (निश्चित) करता है। मान लीजिए मैं बताना चाहता हूँ कि ज़ैद किस का नाम है, तो ये उसी तरह हो सकता है कि उसे लाकर सामने खड़ा कर दूँ और कहूँ कि यह ज़ैद है या अगर सामने नहीं है तो 'वह' के लफ़्ज़ (शब्द) से उसकी तरफ़ इशारा कर दूँ, जैसे वह जिसके बारे में मैं बताना चाहता हूँ ज़ैद है।

बस इसी तरह खुदा की ज़ात हमारे सामने आ नहीं सकती और गुण (Qualities) उसकी ज़ात (निज/व्यक्तित्व) को तय कर नहीं सकते। अब उसकी तरफ़ मन को ले जाने के लिए एक तो उसके ख़ास नाम का ज़रिया है और वह नाम 'अल्लाह' है, मगर अल्लाह के नाम का जब पता देना है तो फिर इशारे के छोड़ और क्या सूरत हो सकती है और वह है शब्द *''हु–व''* ,जो कोई ठहरे मानी नहीं बयान करता बल्कि निश्चित करने के लिए बनाया गया है। *''कुलहुवल्लाहु अ–हद्''* ने उसकी ज़ात के बताने के लिए इसी से काम लिया है कहो कि वह अल्लाह है, उसका पता देने के लिए ''वह'' से ज़्यादा कुछ है ही नहीं। इस ''वह'' के पहचानने वाला बनाने के लिए यह हमारा काम है कि हम गुण की दुनिया में सिमट कर हम्द संस्तुति के शौक़ में पूरा कर लें। मगर उसकी ज़ात तक यह गुण सिर्फ़ ''वह'' की मदद ही से पहुँच सकते हैं, वरना कहाँ ''वह'' और कहाँ शब्दों की दुनिया में घिरे हुए गुण ''वह'' ने उस छुपे (आस्तित्व) हस्ती की तरफ़ मन को ध्यान दिलाया और 'अल्लाह' के शब्द ने उसका नाम बताया। फिर ''अ–हद्'' के माने ने उसकी ज़ात के लिए उस पूरेपन को ज़ाहिर किया जिसकी वजह से वह सबसे अलग है। याद रखिए कि यह ''अ–हद्'' और ''वाहिद'' के मानी एक ही नहीं है। वाहिद तो अपनी हद में हर चीज़ हो सकती है, एक आदमी अपने जिस्म के हिस्सों के साथ 'एक आदमी' है और एक शहर , लाखों रहने वालों के बावजूद एक शहर है और पूरी दुनिया में इतने लोगों के होने के बाद भी 'एक दुनिया' है मगर इनमें से कोई चीज़ भी 'अ–हद्' नहीं है, 'अ–हद्' वह एक अकेला है जिसमें कोई चीज़ मिली न हो, यह एक अल्लाह के और कोई भी नहीं *''अल्लाह हुस्समद''*, अल्लाह वह मालिक व सरदार है जो सबका क़िब्ला, जिधर सब मुंह करें जो सबके मक़सद और ज़रूरतों का केन्द्र बिन्दु है।''

'समद' के यह माने हैं जो खुदा की ज़ात के लिए मुनासिब हैं। कुछ लोगों ने 'समद' के मानी *'मा जो–फ़ लहू'*, वह ठोस चीज़ जिसमें ख़ोल न हो, बताए हैं, यह खुदा की ज़ात के लिए मुनासिब नहीं। *''लम यलिद व–लम यूलद्''*, '' न वह किसी का बाप है और न वह किसी का बेटा है।'' इसके पहले जो तौहीद का बयान हुआ था उसमें सीधी मूर्तिपूजा पर चोट पड़ती थी क्यों कि वह खुदा की इबादत/भक्ति और उसी को ज़रूरत का मरकज़ बनाते थे मगर इस वाक्य ने इसाईयत को ग़लत साबित किया गया है क्यों कि ईसाई हज़रत ईसा (अ0) को अल्लाह का बेटा कहते हैं और यहूदियों की बातें भी क़ुर्आन में दर्ज हैं कि वह ''उज़ैर ''अ0'' को अल्लाह का बेटा कहते हैं। *'' लम यलिद''*, 'वह किसी का बाप नहीं, इससे इस अक़ीदे को ग़लत साबित किया गया है। रह गया वह दूसरा हिस्सा *''वलम युलद''*, 'और वह किसी का बेटा नहीं है।'इस में सामने से किसी मज़हब को ग़लत साबित नहीं किया गया है क्यों कि हमें कोई ऐसा फ़िरक़ा नहीं मालूम जो खुदा को किसी का बेटा समझता हो, बल्कि इसका ब्यान इस जगह पर पहले जुम्ले के लेहाज़ से है और इस बात की तरफ़ इशारा है कि खुदा को किसी का बाप समझना उसी तरह ग़लत है जिस तरह उसे किसी का बेटा समझना। यह दोनों बातें मोहाल (बिल्कुल नामुम्किन) हैं और कोई भी अक़लमन्द इसको नहीं मानता। *'' वलम या कुललहू कुफ़ुअन अहद''*, ''और कोई उसका हमसर (उस जैसा) नहीं ''यह जुम्ला तौहीद (ईश्वर को एक मानना) के सारे पहलुओं को अपने अन्दर समेटे हुए है। इससे एक तरफ़ मूर्तिपूजा को ग़लत साबित किया गया है क्यों कि वह बुतों को खुदा को तरह इबादत के लायक़ समझते हैं। दूसरी तरफ़ इसाईमत ग़लत साबित होता है क्यों कि बेटा बाप की प्रजापति (Species) का होता है।

**(जारी..........................)**